आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के माध्यम से रोगियों का उपचार एक समाज शास्त्रीय अध्ययन

षोधार्थी

कु सुविधा तिवारी

समाज शास्त्र एवं समाज कार्य विभाग

मधुमेह (डाईविटीज)

परिचय

मधुमेह दो शब्दो से मिलकर वना है। पहला शब्द है मधु इसका शाब्दिक अर्थ होता है मीठा, मधुर या शहद। भोजन व्यवस्था में अग्निमोछ दोष को प्रवर्तित करने वाले खान–पान तथा शारीरिक श्रम न करने से दूषित हो उसे कफ विकार वायु तथा पित्त के संसर्ग से त्रिदोषज विकार उत्पन्न कर देते है जो रक्त में मधुरता को तो वढाते ही हैं अग्नाषय में उत्सर्जित होने वाले क्लोम रस में मधुरता को नियंत्रण करने वाले पित्त रस का स्त्राव भी कम कर देते है। फलस्वरूप शरीर की ऊर्जा का प्रमुख घटक शर्करा (मधुरता) चयापचय जन्य क्षीणता के कारण शक्ति उत्पादन में सहायक न होकर पेषाब (मूत्र) के द्वारा शरीर से वहार अधिक मात्रा में निकलने का हेतु बन जाता है। यह ''मेह'' अर्थात मूत्र का अधिक उत्सर्जन ही मधुमेह शब्द का शाब्दिक अर्थ है इस स्थिति को शर्करा मेह क्षोद्रमेह, उदक मेह इक्षुमेह आदि शब्दों से भी व्यक्त किया जाता है।अपने लक्षणों और व्याधियों के समुच्चय के कारण मेदरोग त्रिदोषज भी होता है निःसंदेह धातु क्षय तो मूल कारण होता ही है किन्तु सभी क्रियावद्ध और संज्ञावद्ध स्त्रोतस् दोषों से मिलकर इस रोग को उत्पन्न करते हैं।

यदि मनुष्य ज्यादा आसन शील रहे व्यायाम न करे, न समय–समय पर शरीर का शोधन करे तो भोजन से उत्पन्न हुआ सार अर्थात ग्लूकोज शरीर में से मूत्र के द्वारा वाहर निकलने लगता है इसी अवस्था को मधुमेह करते इसी मधुमेह को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में डाईविटीज मेलाइटस कहा जाता है इसमे मूत्र के साथ–साथ ओज का क्षरण होता है। इस रोग से निकलने वाला मूत्र मधुर स्वभाव का होता है। इसी कारण ऐसे रोगी के मूत्र में चीटियाँ लगती हैं।

प्राकृत अवस्था में मूत्र का विषेष गुरूत्व 1015–1025 तक होता है मधुमेह कि अवस्था में यह 1030 से अधिक हो जाता है। भोजन मे पाया जाने वाला कार्वोहाइट्रेड आंत्रिक पाचन क्रिया के द्वारा ग्लूकोज में परिणित होकर शोषित होता है। और रक्त वाहिनियों द्वारा यकृत में पहुच कर ग्लाई भोजन के रूप में संचित होता है आवष्यकता पड़ने पर यह पुनः ग्लाई को जन एन्जाईय के द्वारा ग्लूकोज के रूप में परिवर्तित होकर एक सापि शरीर के काम करता है। मांसपेषियों को शक्ति प्रदान करने हेतु रक्त में भी एक निष्चित परिणाम में वना रहता है। रक्त में सामान्यता इसकी मात्रा 80–120 प्रतिषत तक रहती है। शर्करा युक्त पदार्थों के सेवन से इसकी मात्रा बढ़ती है। तथा बंद कर देने से घटती है।

विकृति विज्ञानः–

मधुमेह का मुख्य कारण शरीर की कुछ अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के स्त्रावो कि विकृति है।

(1) अग्नाषय (पेकि्याज) (2) चुल्लिका (थाईराइड)

(3) अधि वृक्क ग्रंथि (सुपरारीनल) (4) पीयूष ग्रंथि (पिट्यूटरी ग्रंथि)

इन चारों के द्वारा कार्वोहाईट्रेड के पाचन का नियंत्रण होता है।

अग्नाष्य (पेंक्रियाज):–

इस गंथि से दो प्रकार के स्त्राव निकलते हैं। इसका प्रथम स्त्राव है जो डयूडिनल में पित्त के साथ मिलकर वसा तथा भोजन के अन्य भागों का भी पाचन करता है इसका दूसरा तत्व वीटा सेल्स से निकलता है जिसे इन्सुलिन कहा जाता है। यह मधुमेह का निरोध करता हे। इससे स्पष्ट होता है कि मधुमेह का प्रधान कारण अग्नाषय कि विकृति होना है।

कार्वोहईट्रेड का परिपचनः–

भोजन में लिया जाने वाला सम्पूर्ण कार्वोहाईट्रेड शरीर में से 3 प्रतिषत के लगभग अंष यकृत तथा मांसपेषियों में पहुचकर ग्लाकोजन के रूप में परिवर्तित हो कर जमा हो जाता है। ताकि समय पड़ने पर मांसपेषियों को खर्च करने के लिये तुरन्त ग्लूकोज मिल सके।

शरीर में वसा या फैट का परिपचनः–

शरीर में विधमान वसा जो शरीर के भार का 10 प्रतिषत हो भोजन में लिये गये स्निग्ध तत्वों से व कार्वोहाईट्रेड के परिपचन से उत्पन्न वसाम्ल से आती है। ग्लूकोज के समान शरीर की वसा भी धातुओ को शक्ति प्रदान करने में होती है। वसा से 90 प्रतिषत वसाम्ल बनता है। 10 प्रतिषत उससे ग्लूकोझ भी बनता है। ग्लूकोझ के विना वसाम्ल का परिपचन पूर्ण नहीं होता है।

मधुमेह सम्प्राप्ति और दोष विकारः–

मधुमेह रोग की सम्प्राप्ति त्रिदोषज होती है। यह एक कष्ट साध्य रोग है इसके करण शरीर के प्रमुख शक्ति स्त्रोत तथा उनका पोषण करने वाली प्रणालियाँ विकृत हो जाती हैं। प्रमेह को उत्पन्न करने वाले सभी निदान, दोष, दूष्य सभी मधुमेह के उत्पादक कारण हो सकते है।

मधुमेह के कारण (निदान)

मधुमेह रोग के निम्न कारण हो सकते हैं।

(1) जन्म जात, पैत्रिक कहे जिनेटिक वह कारण वह हेतु होते हैं जो प्रायः अनेक मधुमेह रोगियों में यथासंभव विकसित होकर रोग के लक्षणों को प्रकट करते हैं।

(2) आहार जन्य कारण तथा विहार के विपर्यय से भी मधुमेह रोग का हेतु कारण वनता है।

(3) वात प्रकोपक कारण जैसे भोजन, कटु, कषाय, तथा लघु एवं शीत वीर्य भोजन भी मधुमेह के संचारी दोषों को प्रकुपित करने का कारण होते है।

(4) मधुर पदार्थों का अविवेकपूर्ण और अतिरेकी सेवन को भी मधुमेह का हेतु माना जाता है।

(5) आलसी होना, शारीरिक श्रम न करना विलासिता पूर्ण जीवन यापन करना।

(6) व्यायाम आसन, और प्राणायाम का शारीरिक स्वास्थ्य के लिये उपयोग न करना।
(7) अस्वस्थ्यता के कारण स्वरूप स्वच्छता के शारीरिक और मानसिक उपायों को न करना।
(8) दिवा स्वप्न अर्थात दिन में सोना
(9) धातु क्षय के कारणों को अत्यधिक वढ़ाना
(10) वमन विरेचन आदि पंचकर्मों का अतियोग
(11) अधारणीय वेग धारण जैसे, मल, मूत्र, छींक जम्हाई वीर्य, तृषा क्षुधा आदि को रोकना।
(12) अपतर्पन के कारणों के कारण शारीरिक रस रक्तादि धातुओं के क्षीण होने पर अत्यधिक अनषन ओर अत्यधिक रूक्ष पदार्थों का सेवन
(13) अधिक चिन्ता, अधिक भय, अधिक शोक, अधिक रात्रि जागरण से भी मधुमेह रोग हो सकता है।

मधुमेह के पूर्वरूपः–

पूर्व लक्षणों में दांतो मे मलिनता तथा चिकनाहट, होना कफ विकृति का सूचक है इसके आगे तालु, गला, और मुख मे क्लेदयुक्त अर्थात कफ भरा जैसा प्रतीत होना, हाथ पैरो के तलुवो में जलन, प्यास अधिक लगना, मुंह मे अस्वाभाविक मिठास वनी रहना आंख नाक, कान आदि संस्थानों में मलाधिक्य होना। मूत्र विसर्जन के स्थान पर चीटियों का लगना, शरीर में विषेष प्रकार की दुर्गन्ध आना, अधिक निडा, अधिक तन्डा आना श्वास का क्षीण होना मधुमेह के पूर्व रूप लक्षण होते हैं।

लक्षणः–मधुमेह के पूर्व रूप लक्षण ही पुष्ट और विकसित होकर जटिल रूपों में मधुमेह के लक्षणों के रूप में प्रकट होते हैं।

(1) तृषाधिक्यः–इस रोग में इस लक्षण का अत्यन्त महत्व है। मूत्र शर्करा वृद्धि के अनुपात में तृषा या प्यास में वृद्धि हाती है। रक्त को शुद्ध तथा लघु वनाने हेतु अधिक पानी की मांग करता है ताकि पानी के साथ अतिरिक्त शर्करा रक्त में से घुलकर मूत्र द्वारा आसानी से वाहार निकल जाये।

(2) वहुमूत्रः– इस रोग का सामान्य किन्तु महत्वपूर्ण लक्षण है एक स्वस्थ्य व्यक्ति सामान्य रूप से 24 घंटे में सवा से डेढ़ लीटर पेषाव करता है। 24 घंटे में ढाई से तीन लीटर सर्व साधारण आहार विहार की स्थिति में पेषाव होने पर वहु मूत्र मानना चाहिये।

(3) क्षुधाधिक्यः–भरपेट भोजन करने के थोड़ी देर बाद फिर भूख लगना मधुमेह रोग के अत्यधिक बढ़ने पर ही प्रकट होने वाला लक्षण है।

(4) कृषता एवं दुर्वलताः– युवावस्था में मधुमेह होने पर यह लक्षण विषेष रूप से प्रकट होता है। वहुमूत्रता एवं मत्रषर्करा की अधिकता का कृषता एवं दौर्वल्यता से निकट संवंध है अत्यधिक भोजन करने पर भी मूत्र अत्यधिक उत्सर्ग होने के कारण रोगी कृमषः कृष व दुर्वल होता है।

(5) त्वचा का रूक्ष होनाः–मधुमेह में मूत्रता के कारण शरीर का अधिकांष जलीय अंष वाहर निकल जाने के कारण जलतत्व की कमी होती है। जिससे त्वचा रूक्ष व शुष्क हो जाती है।

(6) गुदृयांग में कण्डूः– गुप्त स्थानों में खुजली का लक्षण अनेक रोगियों में मिलता है। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह लक्षण विषेष रूप से मिलता है।

(7) कोष्ठवद्धताः–यह लक्षण प्रायः पुराने रोगियों में पाया जाता है। ऐसे रोगियों का पेट साफ रखना चाहिये।

(8) मूत्र के आपेक्षिक गुरूत्व में वृद्धिः– मधुमेह के रोगी का मूत्र स्वाभाविक मूत्र की तुलना में भारी होता है स्वस्थ्य व्यक्ति के मूत्र का आपेक्षिक गुरूत्व 1005 से 1025 होता है जबकि मधुमेह के रोगी का आपेक्षित गुरूत्व 1050 तक मिल सकता है।

मधुमेह के रोगियों के विषेष शारीरिक परीक्षण लक्षण

मधुमेह के निदान के लिये सावधानी पूर्वक शारीरिक परीक्षण अनेक विकृतियों से अवगत करा सकता है।

जैसेः–

(1) नेत्रो के परीक्षण से दृष्टि दोष, मोतियाविन्द के लक्षण प्राप्त होते हैं। नेत्र चालन में असामान्यता हो सकती हैं।
(2) गर्दन में असामान्य नाड़ी स्पन्दन मिल सकता है। गले कि थाईराईड ग्रंथि बढ़ी मिल सकती है।
(3) रक्त चाप निरन्तर असामान्य होना कभी कम, कभी अधिक होना।
(4) त्वचा पर सफेद दाग, ष्वित्र, तथा वार–वार विना किसी कारण के त्वचा पर फोले निकलना।
(5) हाथों में संज्ञा शून्यता, उंगलियों व अगूठे में मुड़ने संकुचित होने तथा किसी वस्तु को उठाने, छूने पकड़ने में कठिनाई का होना।
(6) मांसपेषियों का क्षीण होना
(7) असामान्य रूप से वालो का झड़ना व टूटना
(8) पेरों में कमजोरी होना पैर के तलवों में तथा अंगुलियों में व्रण का होना

मधुमेह रोग का निदान (डायग्नोसिस)

(1) मूत्र परीक्षणः–मधुमेह रोग ही पहचान के लिये मूत्र का परीक्षण एक सामान्य क्रिया है। इसके लिये उच्चकोटि की डिप स्टिक का प्रयोग करना चाहिये। भोजन के 1 या 2 घण्टे वाद परीक्षण अधिक विष्वषनीय है।

(2) रक्त परीक्षणः–रक्त में शर्करा की मात्रा का परीक्षण अत्यन्त विष्वसनीय निर्धारण होता है। यह परीक्षण प्रयोग शाला में भी हो सकते हैं। एवं ग्लूको मीटर द्वारा घर में भी हो सकते हैं। सामान्तया रक्त में शर्करा की मात्रा 80–120 एम. एल. की रहती है। जब यह मात्रा इससे अधिक होती है तो रोग का निर्धारण होता है।

मधुमेह के निवारण हेतु चिकित्सा सूत्रः–

साधारणतया सभी प्रकार के प्रमेह आहार जन्य अपष्याहार के परिणाम होते हैं। विषेषतया मधुमेह के रोगी को तो बहुत संतुलित और कैलोरी सापेक्ष्य आहार का विधान करना चाहिये। स्थूल शरीर वाले रोगी का उपवास प्रषस्त होता है। किन्तु कृष रोगी के लिये उपवास का विधान नहीं है। मीठे पदार्थ तो पूणतः बंद कर देना चाहिये, तैल, मलाई, मावा आदि भी शरीर में मेदोवृद्धि करते है। अतः शरीर का वजन अधिक न बढ़ने पाये। भोजन में चावल, चीनी, आलू मीठे फल बंद कर देना चाहिये। जौ के सत्तु, चना, वाजरा, कोदो, मूंग, मसूर की दाल आदि खुष्क और सूखे धान्य का सेवन मधुमेदी रोगी को लाभदायक हैं।

मधुमेह में चिकित्सा सिद्धांतः–मधुमेह की चिकित्सा में वर्तमान में प्रमुख सिद्धांत है।

(1) पश्याहार का सेवन करनाः–मधुमेह के रोगी में आहार को प्रधानता दी गई है। आज से 2500 वर्ष पूर्व चरक, सुश्रुत आदि वैधों के द्वारा आहार के विषय में दिये गये उल्लेख आज भी महत्वपूर्ण है। वास्तव में मधुमेह के रोगी को 1800 कैलोरी भोजन की व्यवस्था होनी चाहिये मधुमेह के रोगी को अलग–अलग भोजन देना चाहिये स्थूल काय वाले रोगी को कम कैलोरी वाला आहार व कृष रोगी को अधिक कैलोरी वाला आहार देना चाहिये।

मधुमेह की चिकित्साः–मधुमेह के रोगी को विभिन्न प्रकार की औषधियाँ दी जाती है। इनसे कुछ निम्न हैं।

(1) वसन्त कुसुमाकर रसः–मधुमेह की चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होने वाला सर्वश्रेष्ठ ओर अतिलाभकारी है मात्रा– 125 से 250 मि.ग्रा. गुडमार क्वाथ से

(2) स्वर्णराज वंगेष्वर रसः–यह रस मूत्र के अत्याधिक एवं बार–बार होने वाली प्रकृति को रोकने वाला है।
मात्रा :– 125 मि. ग्रा. से 250 मि. ग्रा. एला चूर्ण के साथ।

(3) सर्वतो भद्र रसः–इससे शारिरिक दौर्बलता में लाभ मिलता है।
मात्राः– 125मि. ग्रा. से 250 मि. ग्रा.।

(4) सर्वेष्वर रस :–यह मुत्रविकार को नियंत्रित करता है।
मात्राः– 125 मि. ग्रा. से 250मि. ग्रा.।

(5) बृहद सोमनाथ रस :–यह भी मूत्रविकार को नियोजित करता है।
मात्राः– 125 मि. ग्रा. से 250 मि. ग्रा.।

(6) तार केश्वर रसः–यह योग मूत्रविकार को नियोजित करता है।
मात्राः– 125 मि. ग्रा. से 250 मि. ग्रा. जम्बू फल के साथ।

(7) हेमनाथ रसः–यह शर्करा उत्पन्न करने वाले कारको को मिटाने वाला है।
मात्राः– 125मि. ग्रा. से 250 मि.ग्रा.।

(8) प्रमेह गज केषरीः–शारीरिक दुर्बलता को नष्ट कर शक्ति को पुर्नस्थापित करता है।
मात्राः– 125 मि. ग्रा. से 250 मि. ग्रा. में मेथी चूर्ण केसाथ।

(9) मेघनाद रसः– यह शक्ति हीनता व दुर्बलता को दूर करता है।
मात्राः– 500 मि.ग्रा. सालसारादि गण की औषधियों के साथ।

(10) हरिशंकर रसः–सभी प्रमेदों में लाभकारी।
मात्राः– 125 मि.ग्रा. से 250 मि. ग्रा.।

मधुमेह की चिकित्सा में अनेक धातुओं से निर्मित भस्म 3 द्रव्यो का औषधीय प्रयोग किया जाता है।

(1) वग भस्मः– यह भस्म मुत्र मार्ग और मूत्र उत्सर्जित तंत्र में होने वाले दुर्बलता और इंफेक्षन को कम करता है।

(2) स्वर्णमाक्षिक भस्मः– इसका प्रयोग मधुमेह और उसके उपसर्गों एवं उपद्रवों को दूर करने मे होता है।
मात्राः– 250 मि.ग्रा. से 500 मि.ग्रा.।

(3) अभ्रक भस्मः– हृदय मस्तिष्क और स्नायु संस्थान के रोगों को दूर करता है।
मात्राः– 125 मि.ग्रा. से 250 मि.ग्रा.।

(4) नाग भस्मः– मधुमेह मे उपयोगी है।
मात्रा 125 मि.ग्रा. से 250 मि. ग्रा.

(5) यशद भस्मः– मधुमेह में लाभ करती है।
मात्राः– 125 मि.ग्रा. से 250 मि. ग्रा.।

(6) खर्पर रसायनः–
मात्राः– 250 मि.ग्रा. से 500मि.ग्रा. तक।

इसके अतिरिक्त :–

(1)	चनु प्रभावटी	–	500मि.ग्रा. 3बार जल से
(2)	षिलाजित्वाटी	–	500मि.ग्रा. 3 बार जल से ।
(3)	षिवागुटिका	–	500 मि.ग्रा. 3बार जल से।
(4)	जाति फलादि वटी	–	500मि.ग्रा. 3 बार जल से ।
(5)	इंद्रववटी	–	500 मि.ग्रा. 3 बार जल से ।
(6)	द्रार्व्यादि क्वाय	–	20– 80 मि.लि. 2 बार।
(7)	अष्वगंधारिष्ट	–	20– 80 मि.लि. 2बार से।
(8)	कुमारी आसव	–	20–30 मि.लि. 2 बार।
(9)	बवूलाासव	–	20–80 मि.लि. 2बार।
(10)	मधुमेहासव	–	20–80 मि. लि. 2बार।
(11)	जम्बूआसव	–	20–80 मि.लि. 2 बार।

मधुमेह रोग के अनुभूल प्रयोगः–

1.	मधुमेह दमन चूर्ण	–	2–3 ग्रा. सु. शाम जल से ।
2.	श्रेष्ठादि वटी	–	4से 8 स्ती सु. शाम गुड़ मारस्ती क्वाथ से ।
3.	मधुनाषिनी वटी	–	2–2 गोली 3 बार जल से ।
4.	मधुमेह घन वटी	–	2–2 गोली सु.शा. जल से ।
5.	मधुमेहारि चूर्ण	–	1–2 ग्रा सु. शा. जल से।
6.	मधुमेहहर रस	–	4 स्ती से 1ग्रा. तक आंवला रस के साथ।

इसके अतिरिक्त :–

विल्व पत्र, जामुन की गुठली, करेला, नीम, तुलसी, जामफल के पत्ते, सदाबहार के पत्र, वकायन के बीज, चिरायता, मैथी, काली जीरा, गिलोय, त्रिफला, आदिका भी प्रयोग किया जा सकता है।

पंचकर्मन्तर्गत चिकित्साः–

मधुमेह के स्थूल रोगी में संषोधन एव्र कृषरोगी में वृंहण चिकित्सा कि आवष्यकता होती है। मधुमेह रोगी को मलावरोध होने से दोषो का शोधन करने के बाद तुरंत बाद संतर्पण चिकित्सा होनी चाहिऐ

1. अभ्यंगः– वलातेल, क्षीरतैल, तिलतेल, आदि के द्वारा मधुमेह के रोगी का प्रतिदिन अथवा 3 दिन में अभ्यंग होना चाहिए। इससे विभिन्न उपद्रव नहीं होते है। एवं निद्रानाष दुर्बलता अंग मर्द में लाभ होता हे।
2. विरचेनः– मलवद्धता और स्थूल रोगी में, दोष और बल के अनूसार विरेचन करना चाहिए। यह चिकित्सा महीने में एक या दो बार होनी चाहिए।
3. नस्यः– नस्य चिकित्सा मधुमेह के रोगियों को नियमित रूप से करने पर लाभ देता है। इस चिकित्सा से अन्तः स्त्रार्वा ग्रंथियां उत्तेजित होती है तथा अपना कार्य सुचारू रूप से करती हैं। नस्य अणु तेल से करना चाहिए।
4. षिरोधाराः– मधुमेह के रोगी में निद्रानाष से पीड़ित व्यक्ति मे षिरोधारा 2 सप्ताहतक करना चाहिए। इससे अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों के कार्य में सुधार होता है।
5. वस्तिः–कृषरोगी है तो उसे मात्रा वस्ति द्वारा वृहण चिकित्सा कीजानी चाहिए।
   स्थूल रोगीं में मधुतैलिक वस्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

मधुमेह के रोगी की भोजन व्यवस्थाः– शरीर को शक्ति प्रदान करने के लिए कैलोरी आधारित भोजन की व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण होती है। जबकि मधुमेही व्यक्ति को शरीर से मूत्र के साथ अत्याधिक शक्ति का अपव्यय होता है । यदि नहीं अधिक मात्रा में कैलोरी का संचय भी रोग बढाने का कारण होता है। अतः संतुलित मात्रा में न्यूनतम कार्बोहाइडेट वाला सुपाच्य भोजन निर्धारित होना चाहिए।

भोजन की गुणवत्ता निम्नलिखित प्रकार होना चाहिए।

1. रक्त शर्करा को नियोजित करने में सहायक हो।
2. जो उच्च रक्त शर्करा तथा निम्न रक्त शर्करा को नियंत्रित करता है।
3. हृदय और रक्त वाहिनियों में कोलेस्ट्राल जमने से रोक सके।
4. पर्याप्त शक्तिवर्धक तत्वोंसे युक्त है।
5. किडनी के रोगों को बड़ाने वाली न हो।

.....

अर्शरोग

गुदद्वार की त्रिवली की नसे फूलती है और बड़ी हो जाती है अर्ष के मस्से मटर , मुनक्का या इनसे भी बड़े आकार के हो जाते है गुदद्वार के बाहर होने से वर्हिवलि और गुदद्वार के भीतर होने से अर्न्तवलि बवासीर कहलाती है। ये दोनों तरह की बवासीर देखी जाती है खूनी एवं वादी। खूनी बवासीर में खून गिरता है खूनी ववीन प्रायः अर्न्तवलि में होती है। वादी बवासीर में खून नहीं गिरता परन्तु दर्द होता है। बार – बार कब्जियत के कारण मल कड़क होकर जोर से कॉंखना पड़ता है इसी कॉंखने से प्रायः ववासीर होता है। लीवर की खराबी के कारण भी ववासीर रोग हो सकता है।

मल द्वार के पास काटने या कॉंटा चुगने वेदना होना , गुदा में जलन या खुजली होना जैसे लक्षण मिलते है।

निदान :–

1. मिथ्या आहार विहार ।
2. बार – बार जुलाव लेना ।
3. चटपटी मसाले दार चीजों का अधिक सेवन ।
4. मद्यपान ।
5. रात्रि जागरण ।
6. बिना शारीरिक श्रम के जीवन व्यतीत करना ।
7. खून नरम या सख्त आसन पर बेढ़कर काम करना ।
8. यकृत की कमजोरी होना ।
9. बार – बार जोर लगाकर मल प्रवाहन ।
10. बेग धारक करना ।
11. गर्भपात , गर्भस्त्राव , विषम प्रसूति होना ।

समप्राप्ति :–

उपरोक्त निदानों से कुपित होकर तीनों दोष रस एवं रक्त को दूषित करके गुदा की प्रधान में पहुँच कर, त्वचा, मॉंस तथा भेद धातु को दुष्ट कर गुदवलियों में मासाकुट उत्पन्न कर देते है, जिन्हें अर्ष कहते है। जो शत्रु को प्राणों के समान कष्ट पहुँचाये उसे अर्ष कहते है। इससे अर्ष की जटिलता एवं वेदना व्यक्त होती है। इस रोग में समस्त कोष्ठ विकृत हो जाता है। आहार पाचन एवं मल त्याग ठीक से नहीं हो पाते है उपरोक्त कारणों से दोष कोप होकर अग्निमोद्य एवं आप उत्पन्न होता है।

लक्षण

अर्षरोग उत्पन्न होने पर निम्न लक्षण मिलते है :–

1. अजीर्ण 2. अग्नि मांद्य 3. विवोध 4. गुदपीड़ा 5. गुद दाह
6. अम्लोद्गार 7. गुदा में काटने के समान पीड़ा होना। 8. रक्त प्रवृति। 9. उदर में गुइ – गुदा हट।
10. कभी अतिसार कभी विवेध। 11. तन्द्रा , निद्रा , आलस्य। 12. दौर्वल्यता

आदि लक्षण मिलते है।

रक्तार्ष के लक्षण

रक्तार्ष के अषकिरो से रक्त निकलना है। रक्तार्ष में वातानुबन्ध हो तो रक्त पतला और अरुण वर्ज का निकलता है। कफ का अनुबन्ध हो तो श्वेत तथा पिच्छिल रक्त निकलता है। और पितानुबन्ध हो तो ऊष्ण रक्त की प्रवृति होती है। यदि संदेह हो कि गुदा से निकलने वाला रक्त कही उद्योग रक्तपित का परिणाम तो नहीं है तो गुद परीक्षण करके अर्ष का पता लगाना चाहिये।

अर्षरोग की चिकित्सा

अर्ष रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा यही है कि योग्य चिकित्सक के द्वारा शस्त्र या क्षार सूत्र का प्रयोग कर मस्से करवाकर निकलवा दिये जाये या जलौका द्वारा शमन कर दिये जाये।

निदान परिवर्जन :–

1.अर्ष के रोगी को प्रायः कोष्ठ वक्षता रहती है मल खुष्क हो जाता है। इसलिये रोगी की कोष्ठ व क्षता दूर कर मल नरम होकर निकले ऐसी दवा देनी चाहिए।

2. अर्ष अग्नि मांद्य – प्रधान व्याधि है। तथा इस रोग में तल एवं वायु की सम्यक प्रवृति नहीं होती इसमें रेचक तथा वातानुलोमक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

औषधि चिकित्सा

1.	अर्षोघ्नी बटी	–	2 – 2 गोली दिन में 3 या 5 बार देवे।
2.	नागकेषर योग	–	रक्तषि में 3 ग्राम की मात्रा में जल से देवे।
3.	अर्ष कुठार रस	–	2 – 2 गोली दिन में 2 बार जल से देवे।
4.	काकांयन बटी	–	2 – 2 गोली दिन में 2 बार जल से देवे।
5.	अभयारिष्ट	–	3 – 3 चम्मच सुबह – शाम भोजन के बाद जल में मिलाकर देवे।
6.	लाल चन्दन चिरायता, जवासा, सोट का काठा पीवे सुबह – शाम		

पंचकर्म अंतर्गत चिकित्सा

1. अर्ष रोग के मस्सों में जलौका लगाकर रक्त मोक्षण करे।
2. क्षार सूत्र पतति के द्वारा मस्सों का छेदन कर्म करें।
3. अर्ष के रोगी की कोष्ठबधता को दूर कर एवं आम का पाचन करना आवष्यक है।
4. अभ्यंग इस रोग की चिकित्सा में अभ्यंग चित्रक तैल क्षार तैल द्वारा करते हैं एवं वासा अर्क बिल्व के पत्रों द्वारा परिषेक करते हैं।
5. वस्ति– पिपप्लयादि तैल द्वारा अनुवासन वस्ति दी जाती है।
6. निरूह वस्ति– दसमूल का क्वाथ, गौमूत्र, एरण्ड तैल मिलाकर वस्ति का प्रयोग किया जाता है।
7. पिच्छा वस्ति– रक्तार्ष अर्थात जिस अर्ष रोग में रक्त आता है उसमें पित्त शामक दृव्यों द्वारा पिच्छा वस्ति दी जाती है।
8. जात्यादि तैंल की वस्ति दी जाती है।

पंचकर्म चिकित्सा

आर्युवेद चिकित्सा (1)

कित् रोगापनपे धातु से चिकित्सा शब्द की उत्पति होती है, अर्थात रोगो को दूर करना ही वे सभी उपाय जिनसे रोग दूर किया जा सके चिकित्सा साथ हि यह भी ध्यान रखना होगा कि उन उपायो से दूसरे रोग उत्पन्न न हो जाय ।एक रोग शान्त हो जाय परन्तु दूसरे किसी का कोप न हो वही चिकित्सा स्वीकार्य है, विगडे हुये दोष धातु मलो को साम्यावस्था मे लाना हि चिकित्सा है, सभी रोग सम्पति पूर्वक होते है, तव सम्प्राप्ति को तोडना ही चिकित्सा है।

चिकित्सा के चतुष्पाद :–

यदि चिकित्स मे पूर्ण रूपेण सफलता प्राप्त करना है,तो चिकित्सा के चतुष्य पाद का होना ऊत्पन्न आवष्यक इन चारो की उपस्थित ही चिकित्सा की सफलता सुनिष्चित करती है।

चतुष्पाद निम्न है :–

(1) भिषक् यानि बैक(2) औषध (3) परिचारक (4) रोगी

(1) वैधः– श्रेष्ट चिकित्सा की प्राप्ति के लिये कुषलवैध का होना अत्यन्त आवष्यक है, वैध की भी चार मुणो से सम्पन्न होना चाहिये

(1) जिसने अच्छें प्रकार से शास्त्र और उसके अर्च का ज्ञान प्राप्त किया है, (2) चिकित्सा सम्वन्धी कर्मो के प्रत्यक्ष ज्ञान का अनुभव

(3) शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता होना ।

(2) उव्य या औषधि :–

दुव्य या औषधि के भी चार गुण होना चाहिये

(1) प्रमाण वनज या गिनती मे अधिक होना (2) जिस रोग के लिये प्रयोग करना हैं, उस रोग के निवारक मे समर्थ है

(3) चूर्ण क्वाथ,अवलेहू आदि के रू‍प मे वन जाने लायक है।

(3) परिचारक या ऊपस्थाता :–

परिचारक या उपस्थाता को भी चार गुणो से सम्पन होना आवष्यक है, जो निम्न है।

(1) उपचार पद्वति मे निपुर्ण या दक्ष ळें (2) रोगी के प्रति दृढ भक्ति है, (3) कार्य की पवित्रता है। (4) वुद्विमता है।

रोगी :–

रोगी के भी चार गुण होना उत्तम चिकित्सा मे लाभकारी है।

(1) वैध के निर्देषो अपने रोग की स्थितियो का स्मरण रखने वाला हो (2) वैध के निर्देषो का पालन करने वाला हो

(3) गम्भीर स्थिति मे भी भयभति न हो

(4) अपने रोग के विषय मे सम्पूर्ण जानकारी देने वाला हो

ठस प्रकार चिकित्सा के चतुष्य पाद और उसकी सौलह कलाये होती है जव युक्त चतुष्पाद का समायोजन होता है, तो चिकित्सा फलवती होती है और उससे आरोग्य लाभ होता है।

चिकित्सा के प्रकार :–

चिकित्सा के कई प्रकार है, किन्तु शास्त्रकारो ने चिकित्सा के जिन प्रकारो का मुक्ति युक्त ढंग से उल्लेख किया वे ही आधार भूत प्रकार है, जिनके धरातल पर अनेक तरह की चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है।

(1) एक विध चिकित्सा :–

ठसके अन्तगर्त निदान परिवर्जनम या पथ्य का सेवन करना चिकित्सा का एक प्रकार है।

(2) द्विविध चिकित्सा :–

इसके अन्तर्गत एक प्रकार के चिकित्सा उपक्रम है।

(1) सेतपर्ण चिकित्सा (2) अपर्तपण चिकित्सा

(4) या शोधन चिकित्सा एवं शयन चिकित्सा

(3) त्रिविधि चिकित्सा :–

इसके अन्तर्गत उप्रकार को चिकित्सा आती हो

(1) दैव व्यापाश्रम चिकित्सा

(2) युक्ति व्यपाश्रम चिकित्सा

(3) सत्वाजय चिकित्सा

(4) पंचविध चिकित्सा :– इस चिकित्सा के अन्तर्गत निम्न प्रकार है :–

(1) वमन चिकित्सा (2) विरेचन चिकित्सा (3) वस्ति चिकित्सा (4) नस्य चिकित्सा (5) रक्त शोसन चिकित्सा

(5) षंडविध चिकित्सा :– इसके अन्तर्गत

(1) लेघन (2) कृदृंण (3) रूक्षण (4) स्नेहन

(5) स्तम्भन चिकित्सा है।

(7) दषविध चिकित्सा :– इसके अन्तर्गत (1) वमन (2) विरेचन (3) निस्हवस्ति (4) नस्य (5) पिपासा

(6) वायु सेवन (7) धूप सेवन (8) पाचन (9) उपवास (10) व्यापाम

1. राजयक्ष्मा को चिकित्सा में लाक्षणिक चिकित्सा पोनस में अभ्यंग आगुर्वादि तैल से एवं स्वेदन वाष्पस्वेद कराते है।
2. षिर , पार्ष्व , अंषथूल में :– रक्तमोक्षण श्रृंग या जलौका द्वारा करा सकते है। दोषों की अधिकता होने पर।

वमन :– दोषो की अधिकता होने पर मृदु लवण जल से कर्म कराते है।

विरेचन :– मृदु दव्यों द्वारा जैसे आरग्मध , हरड , त्रिवृत द्वारा विरेचन करा सकते है।

हस्त पाद दाह :– इस अवस्था में अभ्यान्तर ध्रत का पान कराते है तथा वासा धृत , शतावरी धृत आदि।

अभ्यंग :–चंदन वाला लाक्षारि तैल द्वारा अभ्यंग कराते है।

अतिक्षीण आतुर में वस्ति का प्रयोग :– ब्रहज एवं रसान वस्ति का प्रयोग शरीर का बल बढ़ाने के लिए करते है।

विरेचन :– सफेद निषोथ का चूर्ण 20 ग्राम ध्रत के साथ लेकर एक सप्ताह तक सेवन करवे इससे विरेचन होकर ज्वर की तीव्रता कम होगी।

वस्ति प्रयोग :– क्रमषः निरुह एवं अनुवासन वस्ति के प्रयोग से धातुगत ज्वर शान्त होता है।

निरुह वस्ति :– दषमूल क्वाथ में एरंड तैल मधु , से धवलवण एवं सौफ डालकर वस्ति देवे।

अनुवासन वस्ति :–महा नारायण तैल 60 – 80 मिली. लेकर अनुवासन वस्ति देवें। चन्दन वला लाक्षाणि तैल या शत धौत धृत से मालिष (अभ्यंग) करें।

पंचकर्म अंतर्गत चिकित्सा

1. अर्ष रोग के मस्सों में जलौका लगाकर रक्त मोक्षण करे।
2. क्षार सूत्र पतति के द्वारा मस्सों का छेदन कर्म करें।